11973

ओ३म्

* अथर्ववेद और जादू टोना *

सायण के किये अनर्थों का नमूना

कन्यादान और कामला रोग की चिकित्सा

पर

अपूर्व वैदिक चमत्कार

गृहस्थ शास्त्र और आयुर्वेद के आश्चर्यजनक सिद्धान्त

वेद में सम्पूर्ण आयुर्वेद

लेखक—

सामवेद भाषा-भाष्य, पुराणतत्त्वपर्यालोचन आदि नाना ग्रन्थों के प्रसिद्ध लेखक, वेद विषय में स्वर्णपदक प्राप्त, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठित स्नातक, वेद विषय के प्रामाणिक आर्य विद्वान्

श्री पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ.

प्रकाशक—

चौधरी श्रीचन्द्र, महेश पुस्तकालय, अजमेर.

जाब प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर में मुद्रित.

प्रथमावृत्ति २०००.	श्रीमद्दयानन्दाब्द १०२. विक्रमाब्द १९८३.	मूल्य ।॥

वेदों के अनन्य भक्त, महर्षि दयानन्द के परमशिष्य,

श्री गुरुकुल विश्वविद्यालय, काँगड़ी के प्रवर्तक,

वीरगति प्राप्त, श्रद्धेय पूज्यपाद, श्री १०८

श्रीस्वामी **श्रद्धानन्द** जीमहाराज

के

चरणकमलों में सप्रेम

समर्पित.

ओ३म्

अथर्ववेद और जादू टोना

प्रारम्भ के दो शब्द

प्रिय पाठकगण ! योरोप के विद्वानों ने वेदों के विषय में जो गज़ब ढाया है वह तो ढाया ही है इसके अलावा शोक की बात तो यह है कि भारतवर्ष के बड़े २ दिमाग़ के सायण जैसे विद्वानों ने भी अपने भाष्य में जो महा अनर्थ किये हैं उनको देखकर अवाक् रह जाना पड़ता है। कहां ईश्वर की प्रभुवाणी और कहां उस में अगल्य २ 'जादू टोना', 'छू मन्तर' की बातें। सायण के पीछे २ पग धरकर चलने वाले लोगों ने सचमुच वेदों को भी मदारी का थैला समझ लिया है। इन्हीं अनर्थकारी भाष्यों ने वेदों का गौरव बहुत घटा दिया है। और लोग वेदों को जंगलियों के गीत समझने लग गये हैं। इस छोटीसी पुस्तक में हमने साफ़ २ दिखला दिया है कि वेद के पवित्र मन्त्रों में कहीं जादू टोना नहीं है। प्रत्युत जादू टोना और यन्त्र तन्त्र मानने वाले सायण ने जो अर्थ किये हैं वह बड़े अशुद्ध अटकल पच्चू निराधार और बेढंगे हैं। इसका नमूना आपको इस छोटीसी पुस्तक के पढ़ने से मालूम होजायगा।

विषय प्रवेश

"अथर्ववेद" चार वेदों में से चतुर्थ वेद है। वर्त्तमान में उपलब्ध सायण आचार्य कृत भाष्य ने वेद के स्वाध्याय करने वाले पुरुषों को इस भ्रम में डाल दिया है कि अथर्ववेद में 'जादू और टोना' का बहुत वर्णन है क्योंकि 'कौशिक सूत्र' में अथर्ववेद के मन्त्रों को नाना प्रकार के जादू के कार्यों में लगाने का विधान किया है। इस पक्ष को मानने वाले विद्वान् जब २ भी अपने पक्ष के पोषण में कोई प्रमाण देते हैं तब २ या तो सायणाचार्य की पंक्तियां उठाकर दिखाई जाती हैं और या 'कौशिक सूत्र' उठाकर सामने रख दिया जाता है। परन्तु आश्चर्य है कि स्वतःप्रमाण वेद का स्वरूप दर्शाने के लिये कौशिक सूत्र जैसे अर्वाचीन ग्रन्थों का आश्रय लिया जाता है। ऐसा करना वेद के स्वतःप्रामाण्य का नाश करके उस पर परतःप्रामाण्य का कलङ्क लगाना है।

अस्तु जो हो। हम अथर्ववेद के कई सूक्तों पर विशेष विचार करें और परीक्षा करें कि उनमें से क्या किसी प्रकार 'जादू टोना' का कोई अंश उपलब्ध होता है या नहीं? और परीक्षा के पश्चात् कौशिक सूत्र और नक्षत्र कल्प आदि विधि तथा विनियोग प्रदर्शक ग्रन्थों पर भी विचार करेंगे।

विचार करने के लिये मैं केवल दो सूक्त प्रस्तुत करूंगा और उन पर कौशिक सूत्र के मन्तव्य भी आपके सामने रखूंगा और तुलना करूंगा कि सायणाचार्य के किये अर्थ कहां तक युक्तियुक्त हैं।

कन्यादान या विवाहविषयक व्यवस्था

'भगम् अस्या वर्चः' इस सूक्त पर सायण ने लिखा है कि—

इति सूक्तेन स्त्रियाः पुरुषस्य वा दौर्भाग्य करणे तदु पयुक्तमाल्यकन्दुकदन्तधावनकेशानां सूत्रोक्तप्रकारेण निखननादि कर्माणि कुर्यात्। तथा च कौशिकः 'भगम् अस्या वर्च' इति मालानिष्प्रमन्द दन्तधावनकेशान् ईशानतहताया इत्यादि। कौ० ४। १२॥

अर्थात् 'भगमस्या वर्चः०' इस सूक्त से स्त्री या पुरुष के दौर्भाग्य करने के लिये उस के बरते हुए माला, गेन्द, दातुन, केश इन पदार्थों को सूत्र में कहे प्रकार से गाड़ना आदि करे। जैसे कौशिक सूत्र में कहा है इत्यादि।

किसी स्त्री या पुरुष के सौभाग्य नष्ट करने और दौर्भाग्य पैदा कर देने के लिये जो सूक्त है सो भी सुनिये—

१ भगमस्या वर्च आदिषि अधिवृक्षादिव स्रजम्। महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्ताम्॥
२ एषा ते राजन् कन्या वधूर्निधूयतां यम। सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः॥
३ एषा ते कुलपा राजन् ताम् उ ते परिदद्मसि। ज्योक् पितृष्वासाता आशीर्ष्णः समोप्यात्॥
४ असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च। अन्तः कोशमिव जामयोऽपिनह्यामिते भगम्॥

यह सूक्त आपने पढ़ लिया है। इसमें एक भी शब्द कौशिक सूत्र में कहे पदार्थों का वाचक नहीं और न किसी स्त्री या पुरुष के सौभाग्य नाश करने का आदेश है और न दौर्भाग्य करने का उपदेश है। फलतः, कौशिक सूत्र की कल्पना निराधार है या उसने केवल अपने जमाने की अन्धपरम्परा को लिख डाला है। पर इतने से अथर्ववेद पर वह कलंक नहीं आता जो सायण या कौशिक के आधार पर चलने वाले स्वार्थी लोग लगाना चाहते हैं। अब इन मन्त्रों पर भी कुछ विचार करना आवश्यक है।

प्रसिद्ध आचार्य, चतुर्वेदभाष्यकार सायण इन मन्त्रों का अर्थ इस प्रकार करते हैं—

"अस्या अनभिमतायाः स्त्रिया भगं भाग्यं वर्चः तद्धेतुभूतं शरीरं असाधारणं तेजश्च आदिषि आददे। मन्त्र प्रभावात् स्वीकरोमि इत्यर्थः। वर्चस आदाने दृष्टान्तः। वृक्षादिव महीरुहादिव। पुष्पिताद् वृक्षाद् यथास्रजं पुष्पनिकरं जना आददते तथेति पूवण सम्बन्धः। एवमपहृतवर्चस्का सा स्त्री किं करोतु इत्याह। महाबुध्न इव महान् दीर्घतरो बुध्नो मूलं यस्य स महाबुध्नः। भूम्याम् अधिकतरं निखात इत्यर्थः। पर्ववान् पर्वतः। स यथा स्वस्थानात् न चलति तथा इयमपि दुर्भगास्त्री ज्योक् चिरकालं पितृषु वक्ष्यमाणेषु पितृमात्रादिगृहेषु आस्तां निवसतु पित्रादिगृहात् न कदाचित् पत्युर्मुखमवलोकयतु इत्यर्थः।"

सायण का अर्थ—इस अनभिमत स्त्री के (भगं) अर्थात् भाग्य (वर्चः) और उसके कारण रूप शरीर के असाधारण तेज कान्ति को मैं (आदिषि) ले लेता हूं अर्थात् मन्त्र के प्रभाव से छीन लेता हूं। स्त्री के तेज को छीन लेने में दृष्टान्त है कि (वृक्षादिव) जिस प्रकार लोग फूले हुए वृक्ष से (स्रजं) फूलों का गुच्छा ले लेते हैं उसी प्रकार मैं इस स्त्री का तेज ले लेता हूं। इस प्रकार यह स्त्री तेजोहीन होकर क्या करे? (महाबुध्न इव) जिस प्रकार विशाल मूल वाला (पर्वतः) पर्वत अपने स्थान से विचलित नहीं होता उस प्रकार यह दुर्भगा अभागी स्त्री (ज्योक्) चिरकाल तक (पितृषु) मा बाप आदि के घर में (आस्तां) निवास करे अर्थात् कभी अपने जीवन में पति का मुख न देखे।

यह है आचार्य सायण का भाष्य, अब यहां प्रश्न उठता है कि वेद किसी सौभाग्यवती तेजस्विनी स्त्री के शरीर के सौभाग्य या तेज को नष्ट कर डालने का उपदेश कर सकता है? कभी नहीं। क्या कोई पुरुष स्त्री के सौभाग्य को वृक्ष की डाल से गुच्छे के समान तोड़ ले सकता है? क्या किसी कुलसौभाग्यवती स्त्री को सदा पितृगृह में डाल देने का उपदेश वेद भगवान् में हो सकता है? कभी नहीं, हां वेद भगवान् तो पुरुष और स्त्री दोनों को सौभाग्य सम्पन्न बने रहने का उपदेश दे सकते हैं। जो दुष्ट पुरुष स्त्री के सौभाग्य को नष्ट करे, उसका अपमान करे और स्त्री को निरादर और कष्ट देने के अभिप्राय से छोड़ दे उसको दण्ड देने का विधान कर सकते हैं, जैसा कि वेद का अनुगमन करने हारे स्मृतिकर्त्ता मनु आदि ने कठोर दण्डों का विधान किया है। और अब भी सरकारी अदालतें ऐसे दुराचारी स्त्रीद्वेषी को दण्ड देती है। तब सायण ने वेदमन्त्र का इतना पाप जनक और लोक मर्यादा का विघातक अर्थ क्यों कर डाला? इसका एक मात्र उत्तर यह है कि धूर्त अनाचारियों ने समाज

में अपना मनमाना जाल फैलाने के लिये और अपने दुष्ट व्यवहारों को छिपाने के लिये उन घृणित कार्यों के साथ वेदमन्त्रों को जोड़ लिया और अन्ध विश्वासी सायण भी उनके पीछे २ कुपथ पर चला गया। थोड़ा विचारने से प्रतीत होता है कि सायण इस मन्त्र को स्त्रीपरित्यागी पति का वचन मानता है। अब इस मन्त्र का वास्तविक अर्थ भी देखिये ॥

यह मन्त्र वास्तव में पति का नहीं है यह गृहस्थ में पैर रखने के अभिलाषी ब्रह्मचारी का है। क्योंकि अगले मन्त्र में कन्या के पिता की तरफ से उसको 'यम' ऐसा सम्बोधन किया गया है। वह ब्रह्मचारी कन्या के पिता से अपने विवाह का संकल्प इन शब्दों में प्रकट करता है कि—

"भगम् अस्याः वर्च आदिषि" इस सौभाग्यवती कन्या के 'वर्चः' ब्रह्मचर्य पूर्वक प्राप्त किये हुए, सौभाग्य जनक कौमारभावरूप तेज को मैं स्वयं स्वीकार करता हूं। किस प्रकार (अधि वृक्षाद इव स्रजम्) जिस प्रकार वृक्ष से फूलों का गुच्छा तोड़ लिया जाता है। अब प्रश्न है कि यह कन्या कहां रहे? तो वह स्वयं उत्तर देता है कि (महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृषु आस्ताम्) विशाल आधार वाले चट्टान के समान हमारे मा बाप भाई बन्धु के बीच में ही यह चिर काल तक निवास करे ॥

वेद मन्त्र के कितने उच्च आदर्श को सायण की लेखनी ने विकृत कर दिया। दूसरे मन्त्र पर दृष्टिपात करने से सायण के किये अनर्थ का और भी स्पष्ट प्रमाण मिलता है। दूसरा मन्त्र कन्या के पिता की तरफ से है।

(२) एषाते कन्या राजन् वधूर्निधूयतां यम। सा मतुर्बध्यतां गृहे ऽथो भ्रातु रथो पितुः ॥

सायणभाष्य—हे राजन् राजमान सोम ! प्रथमातिथित्वेन नियामकत्वात् यमेति तस्यैव विशेषणम्। सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः। तृतीयोऽग्निस्ते पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥ ऋ० १०। ८५। ४०॥ इति। हे ईदृश सोम एषा कन्या स्त्री ते तव वधूः जाया प्रथमतस्त्वया परिगृहीतत्वादित्यर्थः। सा वधूः निधूयतां। दौर्भाग्येन पतिगृहात् निःसार्यतां इत्यर्थः। एवं भवता पतिगृहान्निःसारिता सा वधूः मातुर्जनन्याः गृहेबध्यताम्। बद्धेव तत्रैव चिरं वर्त्ततामित्यर्थः। अथो अपि च भ्रातुः सोदरस्य गृहे बध्यतामिति सम्बन्धः। अथो अपिच जनकस्य गृहे बध्यताम्। एषा वधूः दुर्भगा सती यावज्जीवं मात्रादिगृहेष्वेव यथेच्छं वर्त्ततां। नकदाचित् पतिगृहं प्रविशतु इत्यर्थः।

(समीक्षा)-इस अर्थ में सायण ने कमाल कर दिया है। अर्थात् स्त्री के सौभाग्य के नाश करने में कन्या के पिता को भी शामिल कर दिया है। अर्थात् कन्या का

पिता अपनी कन्या के पति से कहता है कि हे राजन् ! हे यम ! हे प्रथम अतिथे ! हे सोम ! यह कन्या तेरी (वधूः) जाया स्त्री है क्योंकि पहले तू इसे स्वीकार कर चुका है (सा वधूः नि धूयताम्) इस वधू को दौर्भाग्य से पतिगृह से निकाल दो। इस प्रकार जब वह पतिघर से निकल जाय तो वह वधू (मातुः) माता के (गृहे) घर में (बध्यताम्) बंधकर चिरकाल तक रहे । या (अथ) और (भ्रातुः) अपने भाई के घर में बंधकर रहे। (अथो पितुः) या पिता के घर में बंधकर रहे। अर्थात् यह कुलवधू दुर्भगा होकर जीवनभर माता आदि के घर में यथेच्छ रहे और कभी पति के घर में पैर न रखे।

सायण ने अर्थ करने और लोक में अनाचार फैलाने में कमाल कर दिया। जरा विचारने की बात है कि यदि कोई पति अपनी स्त्री को इस प्रकार घर से निकाल दे तो क्या कन्या का पिता अपने जमाई का पक्ष करेगा और कन्या को मा, बाप, भाई के घर में दुर्भगा बना कर बैठे रखना सहन करेगा ? वह पति दण्डनीय है जो अपनी स्त्री पर ऐसा अत्याचार करे और वह कन्या का पिता भी पापी है जो अपनी कन्या पर ऐसा अत्याचार होते सहन करले। कोई भी न्यायशील राजा इन अपराधों के करने वालों को बिना दण्ड दिये नहीं छोड़ सकता। पर इधर सायण जैसे दिमाग इन अमानुषिक अत्याचारों को वेद के गले मढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। इन लोगों के ऐसे प्रयत्नों का ही यह फल हुवा है कि पुरुष समाज ने स्त्रियों पर मन माने अत्याचार किये और देश की वह दुर्दशा कर डाली जिसका वर्णन करना भी रोमाञ्चकारी है। अस्तु अब वेदमन्त्र पर विचार कीजिये।

सत्य अर्थ--पूर्व मन्त्र में जब कन्या से विवाह करने की अभिलाषा प्रकट करनेहारे ब्रह्मचारी (यम) ने यह इच्छा प्रकट की कि मैं इस कन्यारूपी कुसुम को पितृगृह से इस प्रकार लूं जिस प्रकार वृक्ष से फूलों की माला ले ली जाती है और इसे गृह की ही नहीं प्रत्युत अपने शरीर की माला के समान शोभा का साधन बनाऊं और यह कन्या भी मेरे बड़ों के समक्ष पर्वत के समान अचल रहे तब इस पर कन्या के पिता को जो कहना उचित है वही अगले वेदमन्त्र में भी उपस्थित है।

प्रसंगवश हम पर्वत के समान स्त्री के धर्म पर दृढ़ रहने पर पाठकों का ध्यान आकर्षण करते हैं, यह वही मूलतत्व है जिसकी प्रतिज्ञा कन्या विवाह के अवसर पर शिला पर पैर रखकर किया करती है।

पति कहता है "आरोह इममश्मानं अश्मेव त्वं स्थिरा भव" हे वधू ! तू इस शिला

पर पैर रख और शिला के समान स्थिर हो। वेदमन्त्र भी कहता है "महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्ताम्"। यह स्त्री भारी पर्वत के समान बड़ों के समस्त धर्म पर दृढ़ रहे। अस्तु। अगले मन्त्र में कन्या का पिता पूर्व प्रकार से आगत अतिथिरूप वर से कहता है--हे राजन्! (एषा कन्या ते वधुः निधूयताम्।) हे यम! व्रतस्नातक! ब्रह्मचारिन्! यह कन्या आपकी वधू होकर रहे। अच्छा अब वाग्दान तो होगया। अब विवाह-बन्धन का संस्कार शेष है। वह कहां हो? इसके लिये वेद भगवान् आज्ञा देता है। (सा मातुर्बध्यतां गृहे) वह कन्या माता के घर पर ही विवाह-बन्धन में बंधे, (अथ भ्रातुः) या भाई के घर पर या अथो पितुः) पिता के घर पर। अर्थात् विवाह-बन्धन में बद्ध होने की संस्कार-पद्धति तीनों स्थानों में से किसी भी स्थान पर होनी उचित है।

सायण 'राजन्' इस सम्बोधन से स्वयं मानता है कि कन्या का स्वीकार करने वाला प्रथम अतिथि है और 'सोम' अर्थात् कन्या का प्रथम पति है। साथ ही वेद भगवान् उस वधू को 'कन्या' शब्द से कह रहे हैं। यदि वेद भगवान् को स्त्री परित्याग करने का ही उपदेश देना था तो कोई कारण भी दर्शाना उचित था कि स्त्री को पति किस कारण से छोड़; यदि दुराचार से दूषित होकर छोड़े तो वह 'कन्या' नहीं। वह 'अकन्या' है। सायण ने 'निधूयताम्' का अर्थ 'निःसार्यताम्' अर्थात् निकाल दो, किया है 'धूञ्' धातु कम्पनार्थक है। 'नि' उपसर्ग लगने से उसका अर्थ 'प्रेम-केलि' करना होजाता है न कि 'निकालना'। साहित्य के ज्ञाता 'निधुवन' शब्द के प्रयोग से भली भांति परिचित हैं।

अब हम तीसरा मन्त्र लिखते हैं--

एषा ते कुलपा राजन् ताम् उ ते परिदद्मसि। ज्योक् पितृष्वासाता आशीर्ष्णः शमोप्यात्॥

सायण भाष्य--हे राजन्! सोम एषा स्त्री ते तव कुलपा पतिव्रतत्वेन कुलस्य पालयित्री या विवाह काले प्रथमतस्त्वया परिगृहीतत्वात्। तां स्त्रियं ते तुभ्यमेव परिदद्मसि परिदद्मः॥ रक्षणार्थं दानं परिदानं एतावत्कालं पति समीपे स्थिताम् एनां रक्षणार्थं पुनस्त्वदायत्तां करोमीत्यर्थः। तस्या निवासस्थानम् आह ज्योक् चिरकालं पितृषु पित्रादि गृहेषु उक्तेषु आसाते आस्तां निवसतु। पितृकुलवासस्य अवधिम् आह। शीर्ष्णः शिरसः समोप्यात् संवपनात् भूमौ सपतनात्। शिरसो निपातावधीति यावत्।

सायण का भाषार्थ--हे राजन् सोम! (एषा) यह स्त्री (ते) तेरे (कुलपा) कुल का

पतिव्रत धर्म से पालन करने हारी है जिसको विवाह काल में तूने ग्रहण किया था, उस स्त्री को (ते) तुझे ही (परिदद्मसि) देते हैं। रक्षा के लिये दान करना परिदान कहाता है। अर्थात् इतनी देर तक पति के पास रही, अब इस स्त्री की रक्षा के लिये फिर तेरे अधीन करता हूं। उसके निवासस्थान के विषय में कहता है। वह (ज्योक्) चिरकाल तक (पितृषु) पिता आदि के घर में (आसातै) रहे। पिता के घर में रहने की अवधि कहता है। (शीर्ष्णः) सिर के (समोप्यात्) अवपतन अर्थात् संपतन अर्थात् सिर के गिर जाने तक।

(समीक्षा)–यह सायण का भाष्य है। 'राजन्' सम्बोधन होने से विदित होता है कि यह वचन कन्या के पिता का ही वचन है। वह कहता है कि यह स्त्री तेरा कुलपा अर्थात् पतिव्रत्य धर्म से कुल का पालन कर रही है। उसी को पुनः तुझे रक्षा करने के लिये देते हैं। इतना कहकर सायण पता नहीं किस नशे में कहता है "एतावन्तं कालं पतिसमीपे स्थितां एतां रक्षणार्थं पुनस्त्वदधीनां करोमीत्यर्थः"। कि इतनी देर तक स्त्री पति के पास रही अब उसकी रक्षा के लिये तेरे अधीन करता हूं अर्थात् यह पति अपनी स्त्री को कन्या के पिता के पास परित्याग करने को कह रहा है। प्रारम्भ में तो 'राजन' कहकर कन्या के पिता का वचन माना और उसी वाक्य के भावार्थ में उस वाक्य को पति का मान लिया। यह "अन्यस्य प्रक्रमः अन्यस्य उपसंहारः" का दोष है। दूसरे इधर तो रक्षा करने के लिये कन्या का पिता सौंप पति के प्रति कन्या को दे रहा है फिर उत्तरार्ध में वह पिता के घर ही शिर के गिरने या मर जाने तक की अवधि बतला रहा है। इतना असंगत, भद्दा अर्थ सायण की लेखनी से कभी आशा नहीं किया जा सकता था।

और भी यह एक अनर्थ है कि 'कुलपा' पतिव्रत्य से कुल का पालन करने वाली स्त्री को पति क्योंकर पिता के घर जीवनभर के लिये छोड़ने का हठ कर रहा है। क्या वेदमन्त्र ऐसे ही अमानुष अत्याचार करने की आज्ञा देता है। पतिप्रद्वेषिणी अप्रिय-वादिनी के त्याग की तो स्मृतियों में व्यवस्था मिल जायगी। परन्तु सायणकृत भाष्य में लिखे अत्याचार का समर्थन कोई भी स्मृति नहीं करेगी। ऐसी क्या श्रुति जो लोक और स्मृति सब से विपरीत है। यह दोष भगवती श्रुति में नहीं प्रत्युत सायण के मस्तिष्क में है जो कौशिक सूत्र में उद्धृत लोकाऽनाचार के कारण उत्पन्न हुआ है। अब आप भगवती श्रुति पर भी विचार कीजिये।

सत्य अर्थ–(एषा ते कुलपा राजन्) हे राजन्! यह कन्या जिसका विवाह बन्धन अपने पिता के घर में तुझ सौम्य रूप प्रथम पति से हुआ है वही तुम्हारी 'कुलपा' है

कुल का पालन करने हारी हो। इसी निमित्त (ताम् उ ते परिदद्मसि) उस कन्या को तेरे सुपुर्द रक्षार्थ दान करते हैं। वह (ज्योक् पितृषु आसाता) चिरकाल तक पिता आदि अपने परिपालकों के घर में रहे। कबतक? (आशीर्ष्णः शम्) शिर के कल्याणकारी संस्कार और (आ ओप्यात्) लाजावाप संस्कार होने तक। (आशीर्ष्णः समोप्यात्) सायण के शब्दों में शिर गिरने तक। अर्थात् जीवनभर, परन्तु यहां 'कन्या पिताओं के घर में सिर गिरने तक रहे' यहां किस के पिता आदि लिये जांय? कन्या के या वर के? हमारी सम्मति में इसका निर्णय तबतक नहीं होगा जबतक "आशीर्ष्णः सम् ओप्यात्" इसका अर्थ ठीक २ न किया जायगा। "शिरका सम् ओप्य" यह क्या चिड़िया है? कुछ संहिताओं में 'सम् ओप्यात्' के स्थान में 'शम् ओप्यात्' ऐसा पठान्तर है। इतने पर भी समस्या वही है।

श्री क्षेमकरण त्रिवेदी ने अपने भाष्य में ["आशीर्ष्णः' और 'सम् आ उप्यात्' मस्तक स्थिति पर्यन्त जीवन पर्यन्त। वप बीजवपने मुण्डने च। आशीर्लिङ्। यथा मर्यादं बीज वपनं वर्धनं च कुर्यात्"] लिखा है और हिन्दी में—"अपने मस्तक तक [जीवन पर्यन्त वा बुद्धि की पहुंच तक (समोप्यात्) ठीक २ बढ़ती का बीज बोवे"] लिखा है।

क्षेमकरणजी के इस अर्थ में भारी खेंचा तानी है।

"डुवप" इस धातु के बीज सन्तान और मुण्डन इन दो अर्थों को लेकर दोनों भाष्यकार तुल पड़े। एकने संवपन से सम्पतन अर्थ लिया। दूसरे ने बीजवपन मात्र अर्थ लिया। मेरा अपना मत यह है कि दोनों भाष्यकार वेदमन्त्र के तत्वार्थ तक नहीं पहुंचे। क्या कभी खेंचातानी से वेदवाणी रूप कामधेनु रस देगी?। कभी नहीं। वेद का अर्थ समझने के लिये वैदिक काल के आचारों पर दृष्टि देनी होगी। वेद मंत्र में 'आवाप' शब्द का प्रयोग है। यदि 'आशीर्ष्णः शम् ओप्यात्' पाठ स्वीकार किया जाय तो कन्या के पितृगृह में रहने की दो अवधियां होजाती है (१) "आ शीर्ष्णः शम्" और दूसरी (२) "आ ओप्यात्" एक शिर का शम् अर्थात् कल्याण सूचक संस्कार और दूसरी 'आवाप' अर्थात् 'लाजावाप'। शिर का कल्याणकारी संस्कार कौनसा है। यह वही संस्कार है जो सभी जानते हैं कि फेरों के बाद वधू के केशों को वर स्वयं अपने हाथों से छोड़ता है और अपने आप पुनः संवार कर बांधता है। यह कार्य सप्तपदी के पूर्व होता है। वर्त्तमान में इसको पुरोहित लोग पूर्ण रीति से न करा कर केवल दायें हाथ से कन्या का शिरस्पर्शमात्र कराकर छोड़ देते हैं और "प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्" इस मन्त्र का पाठ करते हैं। यह तो "शीर्ष्णः

शम्' की संगति है। रही 'ओप्यात्' की समस्या। आवाप संस्कार भी इस शिरोग्रन्थि मोचन के पूर्व की विधि है। यह 'लाजावाप' अर्थात् लाजाहुति है। गृह्य सूत्रकारों ने 'आवाप' शब्द का प्रयोग 'लाजावापं' में किया है। जैसे-पारस्करमें-" कुमार्या भ्राता शमीपलाशमिश्रांल्लाजानञ्जलिनाऽञ्जलावावपति। कुमारी कन्या का भाई शमीपत्र से मिले धानकी लावा या खीलों को अपनी अंजलि से उठाकर कन्या की अंजलि में डालता है। यह 'लाजावाप' है। वेद मन्त्रों में भी कहा जाता है "इमां लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव"। यह 'आवाप' विधि है। इसी को वेद में कहा है 'आ ओप्यात्' अर्थात् कन्या अपने पितृगृह में इस संस्कार तक रहे। इस संस्कार तक वह फेरे भी फिर लेती है। फेरे फिरना या अग्नि की प्रदक्षिणा करना एक प्रकार से पति के संग लोकयात्रा, या 'हनी मून-जर्नी' का प्रतिनिधि है। उस संस्कार के बाद वह कन्या पति की कुलपालिका पत्नी होजाती है। इस विधि से उसका अपने मां बाप के घर में रहने का काल समाप्त हो जाता है।

इसमें संदेह नहीं कि आवाप का अर्थ संनिपतन भी है परन्तु इतने पर भी यहां शिर का संनिपतन अर्थ नहीं, प्रत्युत आहुति का सन्निपतन है।

जैसा आश्वलाय ने लिखा है कि—

"ओप्य ओप्य है के लाजान् परिणयन्ति, तथा उत्तम आहुती न सन्निपततः"। अर्थात् बहुत से लोग लाजावापाहुतियां देदे कर परिणय अर्थात् फेरे फिरते हैं। परन्तु इस प्रकार करने से पिछली दो आहुतियां परिणय (फेरों) के बाद नहीं पड़ती। शिर के संस्कार या ग्रन्थिमोचन के विषय में भी आश्वलायन ने लिखा है कि। "अथास्यै शिखे विमुञ्चति यदि कृते भवतः। उर्णास्तुके केशपक्षयोर्बद्धे भवतः। प्रत्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् इति उत्तरामुत्तरया।" अर्थात् कन्या के शिर के बालों में दो ऊन के गुच्छे दायें बायें बांधे होते हैं। संस्कार के अवसर पर वर उन को खोल देता है। यह केशपक्ष कन्या के कैशोर भाव के चिन्ह है। उनका खोलना उसको यौवनकाल के प्रारम्भ में पिता के घर से निकाल कर गृहस्थ में प्रविष्ट होने के लिये होता है। यह सब भाव वेदमन्त्र के शब्दों में छिपे हैं। सायण ने उन भावों को सर्वथा ही नहीं समझा। प्रत्युत 'शम् ओप्यात्' इस पाठ की उपेक्षा करके ' सम् ओप्यात्' पाठ बनाकर अर्थ कर डाला है। शुद्ध पाठ 'शम् ओप्यात्' ही है।

अब चौथा मन्त्र भी लीजिये--

> असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च ।
> अन्तः कोशमिव जामयोऽपिनह्यामि ते भगम् ॥ ४ ॥

सायणभाष्यम्—हे नारि ! ते तव भगम् भाग्यम् असितस्य एतन्नाम्न ऋषेः ब्रह्मणा मन्त्रेण अपिनह्यामि । अपिनद्धं पिहितं करोमि । त्वत् सकाशान्निवर्त्तयामीत्यर्थः । तथा कस्यपस्य ऋषेः । गयस्य च । परस्पर समुच्चयार्थश्चकारः । एतयोरपिसम्बन्धिना ब्रह्मणा मन्त्रेण ते तव भगम् भाग्यम् अपिनह्यामि । तत्र दृष्टान्तः । जामयः जायन्ते आसु अपत्यानीति स्त्रियः भगिन्यादिरूपाः ताः अन्तः गृहमध्ये अवस्थितं कोशमिव धनवस्त्रादि स्थापनार्थं आवृतं स्थानमिव तादृशं स्थानं पिहितं कुर्वन्ति तद्वत् इत्यर्थः

सायणका अर्थ-हे ! नारी (जामयः) जिस प्रकार भगिनी आदि स्त्रियां (अन्तः कोशम् इव) धन आदि वस्त्र रखने के लिये ढके स्थान, या खजाने को छुपा कर रखती हैं उसी प्रकार मैं भी (ते भगम्) तेरे भाग्य को (असितस्य) असित ऋषि के (ब्रह्मणा) मन्त्र से और उसी प्रकार (कश्यपस्य गयस्य च) कश्यप और गय ऋषि के (ब्रह्मणा) मन्त्र से (अपिनह्यामि) ढक देता हूं अर्थात् तुझसे छीन लेता हूं ।

(समीक्षा) यह सायणकृत अर्थ है । इस मन्त्र के अर्थ करने में सायण की होशियारी का अन्दाजा लगसक्ता है । कहां तो मन्त्र में कहा है कि मैं पति तुझ स्त्री के भग=भाग्य को असित, गय और कश्यप के मन्त्र से पिहित करता हूं । परन्तु सायण जबरदस्ती उसमें से अर्थापत्ति निकालते हैं 'अर्थात् तेरे से हटा लेता हूं' । "अपिनह्यामि" शब्द का ' ढकना ' अर्थ सायण को भी अभिमत है इसमें सन्देह नहीं, क्योंकि वह स्वयं लिखता है 'अपिनद्धं पिहितं करोमि ' अपिनद्ध अर्थात् पिहित=ढका हुआ करता हूं" तो भी "त्वत् सकाशाद निवर्त्तयामि " अर्थ लिखकर मन्त्र के अर्थ का अनर्थ किया गया है । पति स्त्री के सौभाग्य को उस प्रकार सुरक्षित रखे जिस प्रकार स्त्रियां अपने गुप्त खजाने को सुरक्षित रखती हैं, इस उचित अर्थ को त्याग करके सायण का अभिप्राय यह हो जाता है कि "पति स्त्री से सौभाग्य को ऐसा छीन ले जैसे स्त्रियां अपने घर के भीतर खजाने को छिपाकर के रखती हैं । " सायण का ऐसा अर्थ करना न केवल वेद के 'अपिनह्यामि' शब्द पर घोर अन्याय है परन्तु । 'अन्तः कोशमिव जामयः' इस उपमा पर तो घोर वज्रपात है । सायण के पक्ष में सायण के किये अर्थों के अनुसार भी यह उपमा नहीं घटती । शेष रहा असित, कश्यप और गय इन ऋषियों के मन्त्र से स्त्री के सौभाग्य का नाश करना । क्या कोई बुद्धिमान पुरुष ऋषियों के मन्त्रों से ऐसा

भारी पाप करने की विचार सकता है। क्या ऋषियों के मन्त्र स्त्रियों के सौभाग्य नष्ट करने के लिये होसकते हैं? नहीं। तो फिर सायण की कलम से वेद के मन्त्र और ऋषियों पर भी यह भारी कलंक कैसा? सायणाचार्य की मति और लेखनी की यह उद्दण्डता केवल कौशिक सूत्रादि में लिखे विनियोग के पीछे चलकर हुई है। पाठक गण! थोड़ा विचारें कि उन तीनों ऋषियों के मन्त्र क्या २ हैं? असित ऋषि के नाम से ऋग्वेद में ९ वें मण्डल के ५ वें सूक्तसे २४ वें सूक्त तक २० सूक्त हैं। ये सब पवमान सोमदेवता के हैं। इनमें एक भी ऐसा मन्त्र नहीं जो किसी के सौभाग्य को नष्ट करने वाला हो, उनमें श्री, बल, बुद्धि की प्रार्थना तो अवश्य है। कश्यप ऋषि के नामसे ऋग्वेद के ९वें मण्डल के ९१, ९२, और ११३ ये तीन सूक्त हैं। यह भी पवमान सोमदेवता के ही हैं इन सूक्तों में भी सायण का अभिप्रेत अर्थ सफल नहीं होता। क्योंकि इनमें बल, वीर्य, और अमृत पाने की निरन्तर प्रार्थना है। तीसरा ऋषि गय है। १०वें मंडल के ६३, ६४वें सूक्त ऋषि गय प्लात दृष्ट हैं। ६३वें सूक्त में स्वस्ति वाचन प्रकरण के १५ मन्त्र भी सम्मिलित हैं। जैसे "येभ्यो माता मधु मत्पिन्वते पीयूषं द्यौरादितिरद्रिबर्हाः" इत्यादि। इन मन्त्रों में सौभाग्य, कल्याण की प्रार्थना है न कि सौभाग्य नाश करने की। इस प्रकार हम देखते हैं कि सायणाचार्य ने जितना यश शेष वेदों के भाष्य करने में उपलब्ध किया उसको अथर्व वेद का भाष्य करके सर्वथा नष्ट कर डाला।

इसमें एक यही शंका है कि क्या असित, कश्यप और गय ये ऋषियों के नाम हैं?। सायण ने तो इनको ऋषियों के नाम स्वीकार किया, परन्तु वैसा कर लेने पर भी सायण का अभिमत अर्थ सिद्ध नहीं होता। वस्तुतः ये तीनों नाम परमात्मा के हैं। असित=बन्धन रहित, कश्यप=सर्वद्रष्टा, गय=सर्व व्यापक, प्राणस्वरूप, परमेश्वर के दिये ब्रह्म अर्थात् वेदज्ञान या उसके निमित्त किये ब्रह्मचर्य पालन से ही वर पति अपनी स्त्री के वास्तविक सौभाग्य, सत्पुत्र, स्वास्थ्य एवं लोकयात्रा का पालन कर सकता है॥

वेदों में आयुर्वेद का चमत्कार

अब हमने पाठकों के समक्ष एक सूक्त को उठाकर रख दिया। अब एक सूक्त इसी सम्बन्ध का उद्धृत करते हैं जिस में मन्त्र प्रयोग द्वारा भयंकर रोगों का नाश करना माना जाता है। सूक्त इस प्रकार है—

अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमाच ते। गोरोहित स्य वर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि॥
परि त्वा रोहितैर्वर्णैः दीर्घायुत्वाय दध्मसि। यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत्॥

या रोहिणीर्देवत्या गावो या उत रोहिणीः । रूपं रूपं वयोवयस्ताभिष्ट्वा परिदध्मसि ॥
शुकेषु तेहरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि । अथो हारिद्रवेषु हरिमाणं निदध्मसि ॥ का० १ । सू० २२

इस सूक्त की उत्थानिका में सायण ने लिखा है कि—

तेन हृद्रोगकामलादि रोगोपशान्तये रक्त वृषभरोममिश्रोदकं पाययेत् । तथा तेनैव रक्तगोचर्मच्छिद्रमणिं गोक्षीरे । प्रक्षिप्य संपात्य अभिमन्त्र्य तन्मणि बन्धनम् । तत्क्षीरपानं च कारयेत् । तथा रोहिणं हारिद्रोदनं भोजयित्वा तदुच्छिष्टानुच्छिष्टेन आप्रपदं प्रलिप्य खट्वायाम् पवेश्य तदधः शुककाष्ठशुक गोपीतनकाख्यानां त्रयाणां पक्षिणां सव्यजंघायां हरितसूत्रेण आबन्धनं इत्येवमादिकं सूत्रोक्तं कुर्यात् ।

इस सूक्त की उत्थानिका में सायण ने लिखा है कि--

अर्थात् इस सूक्त से हृदय रोग कामला-पाण्डु रोग की शान्ति के लिये लाल बैल के रोयें पानी में मिलाकर रोगी को पिला दे । और उसी प्रकार इस सूक्त से लाल गोचर्म के टुकड़े में छेदकर उसको गाय के दूध में डालकर मन्त्र पढ़कर ताबीज में बंद करके गले में बांध दे । और वह दूध भी रोगी को पिलादे । या हलदी मिले भात रोगी को खिलाकर उसके झूठे भात से खुटबढ़ई और तोते और गोपीतनक नामक तीनों पक्षियों की टांगें रंगकर उनकी बायीं टांग में हरा डोरा बांधकर रोगी की खाट के नीचे बांध दे । इस प्रकार रोगी चंगा होजायगा ।

इस भाव को हृदय में रखकर सायण ने उक्त चारों मन्त्रों का अर्थ किया है ।

सायण का अर्थ—हे व्याधित पुरुष (ते) तेरा (हृद्योतः) हृदय को संताप देने वाला हृदयरोग या हृदयरोग से उत्पन्न पीड़ा तथा (हरिमा च) कामला आदि रोग से पैदा हुआ शरीर का हरा रंग ये दोनों व्याधियां (अनुसूर्यम् उदयताम्) जाते हुए सूर्य के पीछे ही इस शरीर से उड़ जांय और सूर्य में पहुंच जाय । और (गोः रोहितस्य वर्णेन तेन) उस प्रसिद्ध रोहित=लोहित=लाल रंग के बैल के उससे जुदा किये रंग से (त्वा परिदध्मसि) तुझको परिधान, अच्छादित करते, ढकते हैं । अर्थात् तेरा शरीर अच्छा रंगका बना देते हैं ।

(२) हे रोगी (त्वा रोहितैर्वर्णैः दीर्घायुत्वायपरिदध्मसि) पहले कहे लाल बैल के रंगों से तुझे ढकते हैं । जिससे तेरी दीर्घायु हो (यथा अयमरपा असत्) जिस से यह रोगी पापरहित हो और (अथा अहरितो भुवत्) कामलादि रोग से पैदा हुए हरे रंगसे भी मुक्त हो ।

(३) (याः दैवत्याः रोहिणीर्गावो या उत रोहणीः) जो देवताओं की रोहिणी=लाल रंगकी कामधेनु आदि गौवें हैं और जो मनुष्यों की लाल रंगकी गौवें हैं (ताभिः त्वा रूपं रूपं वयः वयः परिदध्मसि) उनों २ से उनका सबका लाल रंग और उनका सब यौवन उनसे छीन कर तुझ पर धर देते हैं। अर्थात् गायों के लाल रंगके समान तेरा रंगभी बनादेते हैं।

(४) (ते हरिमाणं शुकेषु रोपणाकासु दध्मसि) हे रोगार्त्त! (ते) तेरे शरीर के हरे रंगको तोतों और खुटबढइयों में भेज देते हैं। (अथो ते हरिमाणं हारिद्रवेषु निदध्मसि) और तेरे हरे रंगको तेरे गोपीतनक नामक पत्तियों में धर देते हैं।

क्या अच्छा जादू है! रोगी के खालके रंगको मन्त्र के जोर पर तोतों सुग्गों और खुटबढई पत्तियों में भजने आर लाल गौओं का रंग गौओं से निकाल २ कर रोगी के त्वचा में डालने का करश्मा करने के लिये इस सूक्तके मन्त्रों का प्रयोग करना लिखा है।

हमें सन्देह है कि क्या सायण इन अर्थों को करके सन्तुष्ट था? क्या ऐसे जादू पर सायण को विश्वास भी था? क्या मन्त्र पढ़ देने से रोगीका रंग तोतों पर चढ़ जाता है? क्या गाय का रंग रोगी पर चढ़ जायगा? इन घटनाओं को भी अक्ल नहीं मान सकती और न अक्ल यही मानेगी कि बैल के रोम मिश्रित दूध पीने से यह रोग चला जायगा। यह सब धांदलेबाज़ी मूर्खों की है। मूर्ख लोग वेदके असली अभिप्राय को तो क्या शब्दार्थ तक को नहीं समझे। सायण का यह भाष्य भी मूर्खों का ही मन बहला सकता है। अब इसके वास्तविक अर्थों पर विचार कीजिये।

(अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते) तेरा पाण्डु या कामला रोग और हृदय रोग सूर्य के सेवन से दूर होजाय (तेन गोरोहितस्य वर्णेन त्वा परिदध्मसि) उस प्रसिद्ध गोरोहित के वर्ण से तुझे ढकते हैं। कितना स्पष्टार्थ है। यहां सूर्य ओषधि है। प्रथम हम सूर्य नामक ओषधियों पर विचार करते हैं। आयुर्वेद निश्चय अथर्ववेद का उपवेद है। अर्थात् अथर्ववेद की ओषधियों का विवरण आयुर्वेद में प्राप्त होगा। आप सीधा आयुर्वेद को उठा कर देखिये, सूर्य शब्द से कितनी ओषधियों का ग्रहण होता है।

(१) सूर्य नाम से अर्क, सुवर्चला, ऐन्द्री, क्षीरपर्णी, रक्तचन्दन, अर्कपुष्पा, जपा, बन्धूक, ये वृक्ष कहाते है। इनके अतिरिक्त सूर्य स्वयं अपनी रोगहारी किरणों स सब

ओषधियों में रोगहारक गुण प्रवेश कराता है। अतः उसकी किरणें भी रोगहारी तीव्र ओषधि हैं, अब इन उक्त ओषधियों के गुण देखिये कि क्या वे सब हृद्रोग और कामला रोग का नाश कर सकेंगी कि नहीं। वैद्यक शास्त्र के तत्ववेत्ता लोग प्रथम रोग का निदान करते हैं और फिर ओषधि के गुण पर विचार करते हैं और तब नुसखा या योग तैयार करते हैं। यदि ओषधि का गुण रोग के कारण को दूर करदे तभी वह ओषधि ठीक है। अन्यथा नहीं।

अब सोचिये कि हृद्रोग और हरिमा या कामला जिसका अगला विकृत दुःसध्या-रूप हलीमक या हरिमा रोग है किस कारण उत्पन्न होता है? यह पित्त का विकार होने से उत्पन्न होता है। यह विकृत पित्त त्वचा में आजाने से पाण्डु रोग और हलीमक रोग का रूपधारण कर लेता है जैसा कि पाण्डु रोग की चिकित्सा में चरक मुनिने लिखा है कि "पित्तकृत विकार त्वचा और मांस धातु में नाना प्रकार से फूट जाता है तब पीला और हरा नाना प्रकार का पाण्डु उत्पन्न हो जाता है। उसकी पहचान यही है कि हृदय में स्पन्दन अर्थात् धक्का लगता है। देह में रूखापन पसीने का न आना, थकान, नींदका न आना, अंगों में पीड़ा, दुर्बलता आदि प्रकट होते हैं और भूख मर जाती है"।

अब यहां जो पाण्डु रोग पित्त के विकार का मुख्य और सब से प्रथम लक्षण हृदय में स्पन्दन अर्थात् धक्का लगना है उसको वेद में 'हृद्द्योत' शब्द से कहा है अर्थात् हृदय का चौंकना। इसी से उन्निद्रता होती है, नींद नहीं आती। डाक्टर लोग इसका कारण 'एसिडिटि' कहते हैं। इसके बढ़ने से भूख का नाश होता है और त्वचा का रोग प्रारम्भ होता है।

उसकी चिकित्सा में इन उपद्रवों को शान्त करने वाली ऐसी ओषधियों का प्रयोग करना आवश्यक है जो त्वचा के वर्ण विकार और हरेपनको दूर कर के त्वचा का स्वच्छ वर्ण उत्पन्न करें, रक्त शुद्ध करें, पित्त को शान्त करें, मन्द अग्नि को तीव्र करें और बल उत्पन्न करें। अब इन औषधों का विवेचन कीजिये।

१—सुवर्चला—इसका नाम आदित्य भक्ता, सूर्यभक्ता, आदित्य वल्ली, अर्ककान्ता, मण्डूकपर्णी, मार्तण्डवल्लभा और भास्करेष्टा आदि हैं। इस के गुण धन्वन्तरि राजनिघण्टु के अनुसार—

"आदित्यभक्ता कटुका तथोष्णा स्फोटकापहा। सरस्वती स्वरा स्वर्या रसायनविधौ हिता"॥

यह स्वाद में कटु, स्वभाव में उष्ण, गुण में स्फोट, फुड़िया फुन्सी आदि के विकार का नाशक, कब्जकुशा और रसायन है ।

२–अर्क अर्थात् आक का पेड़ जिसको क्षीरपर्णी या सूर्य कहा जाता है । इसके गुण हैं–

अर्कस्तु कटु रुष्णश्च वातहृद्दीपनः सरः । शोफव्रणहरः कण्डूकुष्ठप्लीहक्रमीन् जयेत् ॥

अर्क का वृक्ष कटु, ऊष्ण, वातहर, अग्निदीपक, कब्ज तोड़ने वाला, सोज, व्रण और खाज, कोढ़, प्लीहा और रोगकारी कीट का नाशक है ।

३–ऐन्द्री इसका नाम सूर्या है । इसके गुण है ।

इन्द्रवारुणिका तिक्ता कटुः शीता च रेचनी । गुल्मपित्तोदरश्लेश्मक्रमिकुष्ठज्वरापहा ॥

यह भी पित्त, और कुष्ट का नाशक है ।

४–रक्तचन्दन = लाल चन्दन, भी चक्षुरोग नाशक, पित्तहर, रक्तशोधक है ॥

'रक्तोद्रेकहरं हन्ति पित्तकोपं सुदारुणम् ॥ रक्तचन्दनमतीव शीतलं तिक्तमीक्षणगदास्रदोषनुत्'

५–जपा अर्कप्रिया कहाती है । यह भी–"जपा तु कटुरुष्णा स्यादिन्द्रलुप्तकनाशकृत्" ।

इन्द्र लुप्तक रोगों में त्वचा पर के बाल नष्ट होजाते हैं । जपा इसका उत्तम औषध है ।

६–बन्धूक = अर्कवल्लभ–

"ज्वरहारी" विविधग्रहपिशाचशमनः । प्रसादनः सवितुःस्यात् ।

अर्थात् मानसरोगों को यह भी शान्त करता है ।

फलतः वेद ने 'सूर्य' शब्द से त्वग्दोष नाशक एक पूरा योग अर्थात् नुस्खा ही बतला दिया । आगे उत्तरार्ध में "गोरोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि ।" दर्शाते हैं की इस चिकित्सा का क्या फल होगा कि हरित वर्ण का नाश होकर त्वचा का लाल रंग हो जायगा । कैसा लाल रंग ? जैसे रोहित का वर्ण होता है । रोहित क्या पदार्थ है ।

'रोहित' शब्द पर विचार

राज निघण्टु के अनुसार रोहित या रोहितक शाल्मली–सेंबर वृक्ष का एक भेद हैं । इसके रोहितक, रोहित, रोही तीनों नाम हैं । इसके गुण भी हैं ॥

"यकृत्प्लीहगुल्मोदरहरःसरः" । या "कृमिदोषव्रणप्लीहरक्तनेत्रामयान्"

यकृत्-दोष, पिलही, गुल्म, उदर रोग, कृमि, व्रण, रक्तविकार और चक्षुदोष का नाश करता है। इसके अतिरिक्त वेद ने यह भी दर्शाया कि रुधिर-रोहित के पुष्प लाल होते हैं। उसके इस गुण से वह रक्तविकार का नाशक है। परन्तु क्योंकि दूसरे मन्त्र में—"परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय परिदध्मसि"। अर्थात् रोहित वर्णों से रोगी के दीर्घायु करने का उपदेश किया है। इसलिये रोहित शब्द से केवल एक, ओषधि लेना उचित नहीं, रोहित शब्द भी एक विशेष ओषधियों के वर्ग का सूचक है। जिन में मुख्य करञ्ज है जिसको उदकीर्य, अंगारवल्ली, गुच्छ करंज, रीठा करञ्ज ये भेद हैं ये भी "व्रणप्लीहकृमीन् हन्ति"। या "सर्वत्वग् दोषशमनोवातहृद्व्रणनाशनः" और अंगारवल्ली—"कण्डूविचर्चिकाकुष्ठत्वग्दोषव्रण नाशनः" ॥

इसी वर्ग में 'कत्तृण' या कट्तृण भी है जिसको रोहिष कहा जाता है। जो "हृद्रोगशमनं परम्" ॥

इसके अतिरिक्त रक्त वर्ण के पुष्पों, पत्रों वाली पचासों ओषधियां हैं जिनका गुण रक्त का शोधन करना, त्वग्दोष का नाश करना है जिनमें करवीर मुख्य है।

जो "चक्षुष्यः कुष्ठकण्डूघ्नः प्रलेपात्"।

शेष रक्तवर्णों की और व्याधियों का विस्तार भय से उल्लेख नहीं करते। अब हम तीसरे मन्त्र को लेते हैं।

इसमें रोहणी दैवत्या गौओं या रोहिणी ओषधियों को हारिद्र रोग का नाशक बतलाया है। रोहिणी वर्ग में जम्बू, रोहितक, रोहिण या वट, कटुक, काश्मर्य, मंजिष्ठ, बांसी और हरीतकी ये औषधियां हैं। ये सभी त्वग् दोष को शमन करती हैं। सभी रक्त शोधक हैं।

चतुर्थ मन्त्र पर दृष्टि डालिये यह मन्त्र ऊपर देखने से तो बच्चों के समान रोगी को बहलाने का सा मालूम होता है और इसका उसी प्रकार अर्थ भी किया गया है। अर्थात् "शुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि। अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं निदध्मसि"

हे रोगी! तेरी त्वचा के हरे रंग को हम तोतों, खुटबढइयों, हारिद्रव नामक पक्षियों में भेज देते हैं। क्या अच्छा मेस्मरिज़्म है? रोगी को कहा जाय लो देखो, तुम चंगे होते हो